इकाई 22 औपनिवेशिक आधिपत्य की पद्धतियां –1: प्रत्यक्ष शासन

इकाई की रूपरेखा

22.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- जान पाएंगे कि दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में साम्राज्यवादी ताकतों ने किस प्रकार प्रत्यक्ष शासन किया,
- समझ सकेंगे कि इन उपनिवेशों की अर्थव्यवस्था और समाज पर इस शासन का क्या प्रभाव पड़ा।

22.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने एक प्रणाली के रूप में उपनिवेशवाद की आधारभूत विशेषताओं का अध्ययन किया। इस इकाई में हम औपनिवेशिक शासन के प्रत्यक्ष स्वरूपों की चर्चा करेंगे; हमें याद रखना चाहिए कि विभिन्न यूरोपीय शक्तियों के उपनिवेशों के स्वरूप अलग-अलग थे। विशेष अध्ययन के लिए हमने दक्षिण एशिया, अफ्रीका और दक्षिण पूर्व एशिया को चुना है और इनमें भी भारत, मिस्र और इंडोनेशिया पर विशेष ध्यान केंद्रित किया है। अलग-अलग विशेषताओं पर विचार करने के लिए हमने ब्रिटिश, फ्रांसीसी और डच उपनिवेशवाद का उदाहरण प्रस्तुत किया है।

22.2 भारत

भारत आदर्श उपनिवेश का एक अच्छा उदाहरण था। यह ब्रिटिश माल का बाजार, कच्चे माल और खाद्यान्नों की आपूर्ति का स्रोत और ब्रिटिश पूंजी के निवेश का एक क्षेत्र था। व्यापार, उद्योग, खनन, बैंकिंग, बीमा, जहाजरानी और परिवहन पर विदेशी कम्पनियों का नियंत्रण था। भारतीय सेना पूरी दुनिया में ब्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा करती थी और भारतीय प्रशासन में बड़ी संख्या में युवा अंग्रेजों को रोजगार के अवसर प्राप्त हुए थे। इसके परिणामस्वरूप भारत अल्प विकसित बना रहा और ब्रिटेन तेजी से दुनिया का सबसे विकसित देश बन गया।

22.2.1 प्रथम चरण

भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के प्रथम चरण में भारत और पूर्व के व्यापार पर एकाधिकार स्थापित करने पर बल दिया गया। प्रतिद्वंद्वी यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों के साथ-साथ भारतीय व्यापारियों को भी व्यापार से वंचित किया गया। ब्रिटिश सम्राट ने भारत से अन्य व्यापारिक कम्पनियों के व्यापार करने पर प्रतिबंध लगाने के लिए एक चार्टर बनाया । यूरोपीय प्रतिद्वंद्वियों को प्रतिस्पर्धा से दूर रखने के लिए युद्ध का सहारा लिया गया। भारतीय व्यापारियों को लाभप्रद समुद्र तटीय और विदेशी व्यापार से दूर रखने के लिए कम्पनी ने अपनी श्रेष्ठ नौसैनिक शक्ति का उपयोग किया। शिल्पियों को अपना सामान सस्ते दामों में बेचने के लिए मजबूर करने और भारतीय व्यापारियों को भागीदारी न देने के लिए राजनैतिक शक्ति का उपयोग किया गया।

वित्तीय संसाधनों की तलाश में विभिन्न क्षेत्रों पर कब्जा किया गया। भारत में लड़े जाने वाले युद्धों और नौसेना तथा सेना के रख-रखाव के लिए भारतीय धन का प्रयोग किया गया। इसके लिए भारतीय राजस्व पर नियंत्रण स्थापित किया गया। विभिन्न क्षेत्रों पर अधिकार जमाया गया और वहां के करों से बड़ी मात्रा में धन प्राप्त किया गया। ब्रिटेन के औद्योगीकरण में निवेश करने के लिए भी धन की जरूरत थी। बंगाल और दक्षिण भारत पर आधिपत्य स्थापित करने के बाद वित्तीय संसाधनों पर नियंत्रण और व्यापारिक एकाधिकार पूरा हो गया। कम्पनी बंगाल से करों और दोहन के द्वारा बड़ी मात्रा में धन इकट्ठा करने लगी। बंगाल के राजस्व का 33% कम्पनी निर्यात के नाम पर बाहर भेज देती थी। इसमें कम्पनी के अधिकारियों द्वारा की गई अवैध वसूली शामिल नहीं थी। **भारत से हुआ धन का अपवहन उस समय के ब्रिटेन की राष्ट्रीय आय का 2% से 3% था।**

प्रशासन के क्षेत्र में मौजूदा रीति रिवाजों और व्यवस्थाओं में कम से कम हस्तक्षेप करने की नीति अपनाई गई। जब तक अधिशेष को आराम से वसूला जा सकता था तब तक कानून, प्रशासन तथा उत्पादन के संगठन में किसी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता नहीं थी। यह महत्वपूर्ण है कि कलकत्ता और बनारस में दो शैक्षिक संस्थाएं स्थापित की गई थीं जो परम्परागत शिक्षा का केंद्र थीं। इस समय तक अंग्रेजी शिक्षा या विचारों से लोगों को परिचित कराने का प्रयास नहीं किया गया।

उपनिवेशवाद के प्रथम चरण के अन्तर्विरोध क्या थे ? किसी भी व्यवस्था को समझने के लिए अन्तर्विरोधों को समझना जरूरी है क्योंकि अन्तर्विरोधों के सामने आने पर ही किसी व्यवस्था का समुचित अध्ययन किया जा सकता है। लघु अवधि और दीर्घ अवधि शोषण के प्रश्न पर मतभेद था। स्पष्ट रूप से किसी उपनिवेश को ज्यादा दिन तक बनाए रखने की दृष्टि से, ताकि वह अधिक लम्बे समय तक उपयोगी रह सके, लघु अवधि शोषण उचित नहीं होता। शोषण और राजस्व के दोहन से उपनिवेश की अर्थव्यवस्था के पुनरुत्पादन की शक्ति क्षीण हो जाती है। कम्पनी ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाना चाहती थी जबकि औद्योगिक पूंजीपति साम्राज्य का विस्तार चाहते थे ताकि लम्बे समय तक इससे लाभ उठाया जा सके। व्यापारिक हित और औद्योगिक पूंजीपतियों के बीच तथा कम्पनी के हितों और पूरे ब्रिटिश सामाज के हित के बीच एक स्पष्ट अन्तर्विरोध था।

22.2.1 द्वितीय चरण

यह मुक्त व्यापार का चरण था। 19वीं शताब्दी के आरंभ में उत्पादक वर्ग और व्यापारिक वर्ग के हितों में

टकराव हुआ और इस बात के लिए तीव्र संघर्ष हुआ कि ब्रिटिश समाज का कौन सा वर्ग भारत पर नियंत्रण स्थापित करेगा। अनेक नियंत्रक अधिनियमों ने कम्पनी के अधिकार को सीमित कर दिया तथा ब्रिटिश सम्राट अब भारत में नियंत्रण शक्ति के रूप में उभरा। इस प्रकार ब्रिटिश अर्थव्यवस्था में हुए परिवर्तन के कारण उपनिवेशवाद के नए चरण का आरंभ हुआ।

व्यापारिक कम्पनियों से उत्पादक वर्ग के हित स्पष्ट रूप से अलग थे और पूंजीपति अपने उत्पादों के लिए बाजार और कच्चे मालों की आपूर्ति के स्रोत तथा तेजी से बढ़ती शहरी जनसंख्या के लिए खाद्यान्न चाहते थे। इस चरण को मुक्त व्यापार का साम्राज्यवाद कहा जाता है क्योंकि इस समय ब्रिटिश वस्तुओं पर सभी प्रकार के शुल्क हटा दिए गए थे। हालांकि उसका यह मतलब नहीं था कि यह छूट सबको दी गई थी। भारतीय वस्तुओं पर शुल्क लगाया जाता था। यही नहीं, ब्रिटेन में आयातित भारतीय उत्पादों पर ऊंचा शुल्क लगाया जाता था। भारतीय कपड़ों पर 30% से 70% के बीच शुल्क लगाया जाता था। भारत में भारतीय उत्पादकों पर सीमा शुल्क लगाया जाता था ताकि ब्रिटिश वस्तुओं से भारतीय उत्पाद प्रतिस्पर्धा न कर पाएं।

सबसे प्रमुख समस्या यह थी कि भारतीय राजस्व को किस प्रकार कच्चे माल के उत्पादन में प्रयोग में लाया जा सके। अंग्रेजों ने कपास, जूट, रेशम, तेलहन, गेहूं, खाल, चमड़ा और नील जैसे कृषीय कच्चे मालों के उत्पादों को बढ़ावा दिया। कभी दुनिया का सबसे बेहतरीन शिल्प उत्पादक रहा भारत अब मात्र कच्चे माल का एक उत्पादक भर रह गया। इसके अलावा पहले चरण से चले आ रहे शोषण का स्वरूप भी कायम रहा। भारत के अन्य भागों पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए और अधिकारियों को ऊंचा वेतन देने के लिए भारतीय राजस्व की आवश्यकता थी।

उपनिवेश को उपयोगी बनाए रखने के लिए इसके आर्थिक, सामजिक और प्रशासनिक ढांचे में परिवर्तन करना आवश्यक था। आर्थिक स्तर पर मुक्त व्यापार का सिद्धांत लागू किया गया। प्रशासन में मूलभूत परिवर्तन किए गए। कानून व्यवस्था बनाए रखना माल को सुरक्षित एक स्थान से दूसरे स्थान को लाने ले जाने के लिए आवश्यक था। कानून के क्षेत्र में परिवर्तन लाकर स्वामित्व, संपत्ति तथा अनुबंध जैसी पूंजीवादी धारणाओं को लागू किया गया। इस समय नए वैधानिक नियम बनाए गए। देश को चलानेवाली एक नौकरशाही के अन्तर्गत क्लर्कों और छोटे कर्मचारियों की जरूरत थी; इस उद्देश्य से पश्चिमी शिक्षा लागू की गई। परिवहन और संचार के साधनों को आधुनिक बनाया गया और उनका विस्तार किया गया। सरकार ने रेलवे की स्थापना की। उदारवादी साम्राज्यवाद ही राजनैतिक विचारधारा थी अर्थात यह माना गया कि उपनिवेशों के राजनैतिक रूप से स्वतंत्र हो जाने पर भी इनका आर्थिक शोषण संभव था। इसलिए इस समय स्व-शासन की काफी चर्चा रही।

दूसरे चरण में भी अन्तर्विरोध सामने आए। भारत जैसे उपनिवेश में विकास के लिए वित्त सीमित था तथा इस कारण भारत के विकास में बाधाएं आईं। यह विकास पूंजीवादी तथा औद्योगिक शोषण के लिए जरूरी था। सभी साधनों को सैनिक और नागरिक खर्च के लिए उपयोग में लाया गया। इस कारण विकास के लिए समुचित राशि न खर्च की जा सकी। कृषि के क्षेत्र में दो परस्पर विरोधी जरूरतें उपस्थित थीं – एक ओर कृषि का विकास करना था और किसानों की आर्थिक स्थिति मजबूत करनी थी ताकि वह कच्चे माल का उत्पादन कर सकें और ब्रिटेन में तैयार माल के खरीददार बन सकें तथा दूसरी ओर साम्राज्य के लिए किसानों से अधिशेष भी वसूल किया जाना था। भारत को पुनरूत्पादनकारी उपनिवेश बनाने तथा उपनिवेशवाद के वास्तविक परिणामों, जो कि विकास को बाधित करते थे, के बीच अन्तर्विरोध था।

22.2.3 तृतीय चरण

इस चरण में उपनिवेशों में विदेशी निवेश हुआ और उपनिवेशों के लिए अन्तरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा शुरु हुई। तीन कारणों से औपनिवेशिक शोषण अपने तीसरे चरण में पहुंचा। विकसित दुनिया के बचे हुए देशों जैसे– अमेरिका, जापान आदि का औद्योगीकरण पहला कारण था। इसके साथ ही यूरोप, अमेरिका, रूस और जापान भी बाजारों और कच्चे माल की आपूर्ति के स्रोतों के लिए प्रतिस्पर्धी बन गए। दूसरे, 19वीं शताब्दी में हुए प्रमुख प्रौद्योगिकी विकासों के कारण कच्चे मालों और खाद्यान्नों की आवश्यकता बढ़ गई। तीसरे, विकसित पूंजीवादी देशों में काफी पूंजी जमा हो गई और इसे बाहर निवेशित किए जाने की जरूरत महसूस की जाने लगी। औपनिवेशिक विस्तार का एक अतिरिक्त लाभ यह था कि इसके द्वारा मजदूरों और किसानों के असंतोष

को कम किया जा सकता था। राष्ट्रीय महानता का स्वप्न और उद्धत देशभक्ति एक ऐसा हथियार था जिसके द्वारा कभी भी देश की जनता को राज्य के पक्ष में किया जा सकता था।

इस अवधि में उपनिवेश के भीतर संकीर्ण विचारधाराएं फिर से सामने आईं और साम्राज्यवादी नियंत्रण को पूरी ताकत के साथ स्थापित करने का प्रयत्न किया गया। कर्जन दमन और नियमन की नीतियां लागू करने वाला अंतिम वायसराय था। रेलवे, बागानों, खनन, जूट, जहाजरानी, व्यापार और बैंकिंग में अंग्रेजों द्वारा किए गए विदेशी निवेश को संरक्षण प्रदान करने के लिए यह जरूरी था। पूर्ण नियंत्रण इसलिए भी आवश्यक था क्योंकि साम्राज्य की सुरक्षा और विस्तार के लिए सेना का इस्तेमाल एक हथियार के रूप में किए जाने की आवश्यकता थी। अब स्व-शासन की बात नहीं की जा रही थी; इसके बजाय यह घोषणा की गई कि भारत की जनता अभी शैशव अवस्था में है और स्वयं शासन करने के लिए योग्य नहीं है।

उपनिवेश पर कड़े नियंत्रण के लिए बनाई गई इस बृहद योजना में अन्तर्विरोध उसमें निहित वित्तीय प्रतिबंधों के कारण था। सोने का अंडा देने वाली मुर्गी का जीवन ही खतरे में पड़ गया था। उपनिवेश का और भी शोषण करने के लिए इसे विकसित करना जरूरी था। परंतु जरूरत से ज्यादा शोषण ने देश को इतना पीछे धकेल दिया था कि विकास भी संभव नहीं था। इसका एक अन्तर्विरोध यह सामने आया कि आधुनिकीकरण से एक ऐसा सामाजिक वर्ग उत्पन्न हुआ जिसने उपनिवेशवाद के खिलाफ आंदोलन छेड़ दिया।

22.3 भारत में ब्रिटिश शासन का प्रभाव

भारत के औपनिवेशिक आधिपत्य ने इसे एक आदर्श उपनिवेश में परिणत कर दिया था जिसकी अर्थव्यवस्था साम्राज्यवादी देश ब्रिटेन के अधीन थी। भारत ब्रिटिश वस्तुओं के लिए बाजार और ब्रिटेन के लिए कच्चे माल और खाद्यान्न का आपूर्तिकर्ता बन गया था। एक विडंबना यह थी कि पूंजीवाद के प्रसार ने जहां यूरोप को आधुनिकीकरण और विकास के पथ पर आगे बढ़ाया था, वहीं उपनिवेश में पिछड़ेपन और अल्प विकास का माहौल पैदा किया था। पूरी अर्थव्यवस्था ब्रिटेन के हित के लिए काम कर रही थी।

22.3.1 कृषि

ब्रिटिश शासन का कृषि अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। भू-राजस्व की ऊंची दर तय करके कृषि से ज्यादा से ज्यादा अधिशेष उगाहने की कोशिश की गई। राजस्व वसूली को अधिक कुशल बनाने के लिए बंगाल के स्थाई बंदोबस्त के तहत जमींदरों का एक नया वर्ग सामने आया। पहले से राजस्व वसूल करने वालों को निजी भूमिपति बना दिया गया जिन्हें भूमिपतियों के कुछ अधिकार दिए गए परंतु वसूल किए गए राजस्व में से एक छोटा हिस्सा रखकर उन्हें सारा धन राज्य को देना पड़ता था। ये जमींदार मनमाने ढंग से किसानों का शोषण किया करते थे। मद्रास और बम्बई प्रेसिडेंसी में हर खेतिहर से व्यक्तिगत कर वसूल करने के तहत रैयतवाड़ी पद्धति लागू की गई। हालांकि राजस्व का बोझ ज्यादा होने का इतना ही मतलब था कि वे बंगाल के किसानों की अपेक्षा थोड़ी बहुत ही बेहतर स्थिति में थे।

किसान ऊंचे राजस्व दर के बोझ के तहत पिस रहा था। नए पूंजीवादी संबंधों के तहत भूमि खरीदी बेची जाने वाली चीज हो गई थी और कई किसान मालिक धीरे-धीरे कृषि मजदूरों में परिणत होते चले गए। भू-राजस्व देने के लिए अभागे किसान महाजनों, जमींदारों और अधिकारियों से ऋण लेते थे जिसके बदले में उन्हें अपनी जमीन गिरवी रखनी पड़ती थी। बाढ़, सूखा और अकाल के समय भी राजस्व वसूली में ढील नहीं की जाती थी। जमींदारों और राजस्व वसूलने वाले बिचौलियों ने अपने राजस्व अधिकार पट्टे में किराय वसूलने वाले बिचौलियों को दे दिए। यहां ऐसे कृषि संबंधों का विकास हुआ जो न तो पूंजीवादी थे और न तो सामंतवादी बल्कि यह अर्ध-सामंती और अर्ध-पूंजीवादी थे। कृषि की उत्पादन तकनीक में कोई विकास नहीं हुआ। औपनिवेशिक सरकार ने इस दिशा में आधुनिकीकरण करने का कोई प्रयास नहीं किया।

उन्नीसवीं शताब्दी में अनाजों के स्थान पर कपास, जूट, तम्बाकू, गन्ना, और तेलहन जैसी नगदी फसलों के उत्पादन को प्राथमिकता देकर कृषि का व्यावसायीकरण किया गया। संयुक्त राज्य अमेरिका में हुए गृह युद्ध के कारण वहां से कपास की आपूर्ति बन्द हो गई जिसके कारण भारत पर कपास उपलब्ध कराने का बोझ बढ़ गया। कपास की खेती करने के लिए व्यापारियों ने किसानों को ऋण उपलब्ध कराया। कपास

के अलावा विदेशी बाजार में के लिए अफीम और नील की भी खेती की जाने लगी। एक ओर अनाज का प्रति एकड़ उत्पादन प्रतिवर्ष 0.18 % घट गया जबकि गैर खाद्यान्न फसलों का प्रतिशत प्रतिवर्ष 1.31 बढ़ गया। नगदी फसल के उत्पादन में बढ़ोत्तरी होने से ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महाजनों और सूदखोरों की भूमिका बढ़ गई। कुछ क्षेत्रों में समृद्ध किसान महाजनों के चंगुल से मुक्त रहे और नगद फसल उपजाकर पर्याप्त बचत कर पाए। इस प्रकार किसानों के बीच का अन्तर बढ़ने लगा।

22.3.2 व्यापार

भारत के विदेशी व्यापार की पद्धति और दिशा अंग्रेजों के हित में निर्धारित की जाती थी। निस्संदेह विदेशी व्यापार बढ़ा था। 1934 में 15 करोड़ रुपए से बढ़कर 1858 में 60 करोड़ रुपए, 1899 में 213 करोड़ रुपए और 1924 में 758 करोड़ रुपए हो गया था। परंतु यह व्यापार पूरी तरह ब्रिटिश हितों की पूर्ति करता था। भारत कच्चे माल और खाद्यान्न का निर्यात करता था और ब्रिटेन का तैयार माल भारत में आयात होता था। यहां तक कि आयात से ज्यादा निर्यात होने पर भी यह धन के अपवहन का एक जरिया था; यह कोई फायदे की स्थिति नहीं थी जैसा कि एक आजाद देश में होता है।

22.3.3 उद्योग

भारत के परम्परागत उद्योग नष्ट कर दिए गए। सबसे पहले कम्पनी ने शिल्पियों से माल खरीदने का एकाधिकार प्राप्त किया और उन्हें घाटे में काम करने के लिए बाध्य किया। उसके बाद ब्रिटेन से आयातित शुल्क-मुक्त तैयार वस्तुओं से उन्हें मुकाबला करना पड़ा। परम्परागत हस्तशिल्पों के विनाश के बाद शिल्पी कृषि की ओर लौटे जिससे कृषि पर बोझ बढ़ा और इसका प्रतिकूल प्रभाव उत्पादन पर भी पड़ा। इस प्रकिया को अनौद्योगीकरण कहा जाता है। एक प्रमुख आर्थिक इतिहासकार ए.के. बाग्ची के अनुसार 1809 -13 में मध्य गांगेय क्षेत्र में उद्योग पर आश्रित आधे लोग 1901 तक आते-आते अपनी रोजी-रोटी खो बैठे।

औपनिवेशिक युग में भारत में आधुनिक उद्योग का विकास हुआ। रोजी-रोटी से हाथ धोने वाले लाखों शिल्पी मजदूर बन गए। आधुनिक परिवहन और संचार व्यवस्था की स्थापना से एक अखिल भारतीय बाजार बन पाना संभव हुआ। सबसे पहले कपास और जूट, कोयला खनन और चाय बगानों जैसे उद्योग की शुरुआत हुई। इसके साथ-साथ सहायक उद्योगों की भी स्थापना हुई। व्यापार के प्रसार और गांवों से कच्चा माल और खाद्यान्न प्राप्त करने के लिए आर्थिक अधिसंरचनाओं का विकास जरूरी था। इससे भारतीय पूंजीपतियों को भी फायदा हुआ। रेलवे के विस्तार से रेलवे ओर इंजिनियरिंग कारखानों की स्थापना हुई। अधिकांश आधुनिक उद्योगों पर अंग्रेज पूंजीपतियों का नियंत्रण था और वे ही उनके मालिक थे। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद ही वस्तुतः आधुनिक उद्योग विकसित हो सका। 1930 के दशक में हुई मंदी से भारतीय उद्योग को आगे बढ़ने में मदद मिली।

इस प्रकार, भारत में आधुनिक उद्योगों की स्थापना तो हुई परंतु यहां औद्योगिक क्रांति नहीं हुई। यहां बड़े पूंजी निवेश वाले भारी उद्योग भी नहीं स्थापित किए गए क्योंकि ब्रिटिश उद्योगपति भारत में मशीन बेचना चाहते थे। केवल वही उद्योग स्थापित किए गए जो ब्रिटिश उत्पादों से मुकाबला करने की स्थिति में नहीं थे। अतएव, **भारत का व्यापारिक रूपांतरण हुआ, औद्योगिक क्रांति नहीं हुई**। 1900-04 में कुल घरेलू उत्पाद में औद्योगिक क्षेत्र का अंशदान 12.7 % था, 1915-19 में 13.6 % और 1940-44 में 16.7 % था। इसके विपरीत 1900-04 में प्राथमिक क्षेत्र का अंशदान 63.6 % था, 1915-19 में 59.6 % और 1940 में 47.6 % था। भारत की प्रतिव्यक्ति आय 1938-39 के मूल्य आधार पर 1900-04 में 52.2 रुपए, 1915-19 में 57.3 रुपए और 1940-44 में 56.6 रुपए था। सांस्कृतिक और बौद्धिक क्षेत्रों में भी आधुनिक और प्रगतिशील दिशा में रूपांतरण नहीं हो सका। आधुनिक शिक्षा भी इस प्रकार आंशिक तौर पर लागू की गई ताकि लोगों की स्वतंत्र रूप से सोचने की शक्ति न बढ़े और प्रशासन चलाने के लिए क्लर्कों की आपूर्ति होती रहे। इसके बावजूद शिक्षित वर्ग पश्चिमी विचारों से परिचित हुआ और भारत में उदारवादी ब्रिटिश शासन की मांग की जाने लगी। उन्नीसवीं शताब्दी में सामाजिक सुधार की दिशा में कुछ प्रयत्न किए गए परंतु 1857 के विद्रोह के बाद इनको रोक दिया गया। कुल मिलाकर सामाजिक क्षेत्र में संकीर्ण और यहां तक कि प्रतिक्रियावादी नीतियां अपनाई गई। देश की जनता को एकजुट होने से रोकने के लिए साम्प्रदायिक फूट और जातिवादी मतभेद का सहारा लिया गया। फूट डालो और शासन करो अंग्रेज शासकों का मूलमंत्र था।

बोध प्रश्न 1

1) भारत में उपनिवेशवाद की प्रमुख विशेषताएं क्या हैं ?

....

....

....

....

....

....

2) भारतीय कृषि पर औपनिवेशिक शासन का क्या प्रभाव पड़ा?

....

....

....

....

....

....

22.4 अफ्रीका

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में अफ्रीका पर आधिपत्य स्थापित किया गया। 1880 तक अफ्रीका के एक छोटे से हिस्से पर (मात्र 20 %) ही शासन कायम हो सका था। यूरोपीय शक्तियां अफ्रीका के साथ व्यापार करना चाहती थीं और आवश्यकता पड़ने पर अनौपचारिक राजनैतिक नियंत्रण भी स्थापित करना चाहती थीं। यूरोप में औद्योगिक क्रांति के प्रसार होने से नई राजनैतिक महत्वाकांक्षाएं और प्रतिस्पर्धाएं सामने आईं। 'नव-साम्राज्यवाद' और प्रतिद्वंद्वी पूंजीवादी एकाधिकार के युग में प्रत्यक्ष राजनैतिक नियंत्रण पर बल दिया गया। यूरोप में प्रचलित उच्च औद्योगिकी तथा वहां के वित्तीय और सैनिक संसाधनों एवं यूरोप के अपेक्षाकृत स्थायित्व के बल पर उसने अफ्रीका पर आधिपत्य जमा लिया।

280 लाख वर्ग मी. से ज्यादा क्षेत्र में फैले इस महाद्वीप पर यूरोपीय शक्तियों ने कब्जा जमा लिया और इसका विभाजन कर दिया। इस प्रक्रिया में उन्होंने संधि और विजय अभियान जैसी रणनीतियां अपनाई। अनेक संधियां की गईं तथा इनके अंतर्गत यूरोपीय शक्तियों के प्रभाव क्षेत्रों को अंकित किया गया। इन संधियों में 1890 तथा 1893 की आंग्ल-जर्मन संधियां और 1891 की आंग्ल-इतालवी संधि और 1899 का आंग्ल-फ्रांसीसी सम्मेलन उल्लेखनीय हैं। फ्रांसीसी सैनिक अभियान की नीति में ज्यादा विश्वास रखते थे। ब्रिटेन का सैनिक साम्राज्यवाद भव्य होने के साथ-साथ क्रूरतापूर्ण था। इस शताब्दी के अन्त में नाइजिरिया पर धीरे-धीरे कब्जा जमा लिया गया। सूडान पर 1896 में कब्जा कर लिया गया। 1890 में जंजीबार संरक्षित राज्य बन गया और पूर्वी अफ्रीका का ब्रिटिश अभियान यहीं से संचालित किया गया। यूगांडा 1894 में संरक्षित राज्य बन गया। जांबिया (जिसे पहले उत्तरी रोडेशिया के नाम से जाना जाता था) पर 1901 में आधिपत्य स्थापित कर लिया गया। यह ध्यान देने की बात है कि परम्परागत रूप से अधीनस्थ क्षेत्रों में ही आधिपत्य स्थापित किया गया (पूरब में पुराने हाथी के दांत के व्यापार क्षेत्रों पर कब्जा किया गया)।

आधिपत्य के इस पूरे दौर को तीन युगों में विभाजित किया जा सकता है। 1880-1991 को प्रथम चरण माना जा सकता है जिसमें विजय अभियान शुरु किए गए और आधिपत्य स्थापित किया गया। 1910 के बाद औपनिवेशिक व्यवस्था को मजबूत बनाया गया। दूसरा चरण, 1919-1935 समझौते का युग था। 1935 के बाद तीसरे चरण की शुरुआत होती है जिसमें स्वतंत्रता आंदोलन आरंभ हुए। 1935 के बाद 45 वर्षों में

अफ्रीका के अधिकांश क्षेत्रों (94 %) से औपनिवेशिक व्यवस्था को उखाड़ फेंका गया। औपनिवेशिक शासन औसतन 100 वर्षों तक कायम रहा।

22.4.1 औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था

द्वितीय विश्व युद्ध तक आते-आते औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था अपने उत्कर्ष पर पहुंच गई। 1880 और 1935 के बीच नए उत्पादन संबंध स्थापित किए गए। सड़क, रेल, और टेलीग्राफ संचार के विकास से नई अर्थव्यवस्था के आरंभिक संकेत मिले।

अफ्रीका की आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्थाओं को नष्ट कर दिया गया या बदल दिया गया और उस पर औपनिवेशिक आधिपत्य स्थापित कर लिया गया। एक दूसरे के बीच के और विश्व के अन्य हिस्सों (साम्राज्यवादी शक्ति के अलावा) से उनके सम्पर्क सूत्रों को तोड़ दिया गया। मुद्रा अर्थव्यवस्था की शुरुआत की गई और वहां भूमि के क्षेत्र में क्रय-विक्रय संबंधों को विकसित किया गया। औपनिवेशिक हितों के अनुसार आधारभूत संरचनाओं के केंद्रीय अर्थव्व्यवस्थाओं से सम्पर्कों को प्रोत्साहित किया गया। औद्योगीकरण को हतोत्साहित किया गया। फिल्ड हाउस के अनुसार " 1945 के पहले संभवत: किसी भी औपनिवेशिक सरकार में उद्योग विभाग नहीं थे।'' परम्परागत शिल्प नष्ट कर दिए गए। 'एक फसल' अर्थव्यवस्था स्थापित की गई जिसमें नगदी फसलों पर विशेष बल दिया गया। विश्व अर्थव्यवस्था से जुड़े अफ्रीका की स्थिति उसके लिए अलाभप्रद हो गई। अफ्रीका के भीतर के क्षेत्रों में होने वाला आपसी व्यापार वास्तव में समाप्त हो गया।

भूमि हस्तांतरण आमतौर पर प्रचलित किया गया। 1930 तक लगभग 2740,000 हैक्टर भूमि कीन्या में हस्तांतरित की गई। औपनिवेशिक आधिपत्य के परिणामस्वरूप अफ्रीकी समाज में विभेदीकरण बढ़ता चला गया। व्यापक तौर पर किसान अपने व्यवसाय को छोड़ने के लिए बाध्य हो गए। लेकिन 'मजदूरीकरण' की प्रक्रिया भी सीमित थी। अमीर किसानों का एक वर्ग सामने आया। यूरोपीय ताकतों ने वित्तीय पूंजी के आधार पर अफ्रीका की अर्थव्यवस्थाओं को औपनिवेशिक निर्भर क्षेत्रों में बदल दिया। स्वेज नहर के लिए लिए गए ऋण के कारण मिस्र कर्ज के जाल में फंसता चला गया। सोने और हीरे के खनन पर बड़ी अन्तरराष्ट्रीय कम्पनियों का नियंत्रण था।

22.4.2 औपनिवेशिक प्रभाव

अफ्रीका पर इतिहास लिखने वाले औपनिवेशिक इतिहासकारों ने यह बिलकुल गलत कहा है कि अफ्रीकावासियों ने औपनिवेशिक शासन का स्वागत किया था। इसी प्रकार सामाजिक डार्विनवाद के सिद्धांत ने इस मत के द्वारा उपनिवेशवाद को संगत ठहराया है कि कमजोर प्रजातियों पर मजबूत प्रजातियो का आधिपत्य अवश्यंभावी होता है; यूरोपीय प्रजाति की सर्वाधिक श्रेष्ठता के कारण यह तो होना ही था। एक अन्य सिद्धांत को शक्ति संतुलन के सिद्धांत के नाम से जाना जाता है जिनके अनुसार यूरोपीय राष्ट्रों के बीच होने वाला टकराव अफ्रीका में प्रस्फुटित हुआ ताकि यूरोप में यह संतुलन न गड़बड़ाए। परंतु यह स्पष्ट था कि औपनिवेशिक शासन का मुख्य उद्देश्य साम्राज्यवादी ताकतों के हितों में उपनिवेश का आर्थिक शोषण करना था।

कुछ पश्चिमी विद्वानों के अनुसार औपनिवेशिक शासन एक वरदान था। इसनेआधुनिक आधारभूत संरचनाओं, स्वास्थ्य और शिक्षा का प्रसार किया। डेविड फिल्ड हाउस ने इसके प्रभावों को "कुछ अच्छा और कुछ बुरा कहा है''। गैन और डिगनैन के अनुसार "सांस्कृतिक आदान-प्रदान महत्वपूर्ण था और केवल राजनैतिक शोषण पर बल देना गलत था।" दूसरी ओर, डब्ल्यू रोडने ने उपनिवेशवाद को "एक सशस्त्र डाकू कहा है।''

इसमें कोई संदेह नहीं है कि उपनिवेशवाद का सीमित सकारात्मक प्रभाव एक संयोग था जो शोषण के लिए अपनाए गए उपायों से पैदा हुआ था। निश्चित रूप से शांति और स्थायित्व कायम हुआ था। परंतु आरंभ में चारो ओर अव्यवस्था थी। अफ्रीका का राजनैतिक स्वरूप बदल दिया गया। इसके पहले वंश एक इकाई थी और अब उसके स्थान पर क्षेत्रीय इकाइयां बना दी गईं । इसके बाद से जातीय टकराव शुरु हुआ। वास्तविक स्थिति को पूरी तरह से नजरंअदाज कर औपनिवेशिक शासन ने जिस प्रकार मनम ने ढंग से क्षेत्रीय इकाइयों का निर्धारण किया था उसी के परिणाम्स्वरूप जातीय टकराव शुरु हुए। कुछ हद तक यूरोपीय ढर्रे पर न्यायिक व्यवस्था और नौकरशाही तथा नई संस्थाओं की स्थापना की गई। परमपरागत रूप से पीड़ित

व्यक्ति की क्षतिपूर्ति के स्थान पर अपराधी को दड दिए जाने की अवधारणा सामने आई। अखिल अफ्रीकावाद और राष्ट्रवाद उपनिवेशवाद के ही परिणाम थे।

औपनिवेशिक शासन के नकारात्मक प्रभाव सर्वत्र नजर आते हैं। आर्थिक बदहाली के अलावा परम्परागत राजतंत्र और मुखिया राज जैसी देशी सरकारों की व्यवस्थाओं को क्षति पहुंचाई। गुलामी की मानसिकता का विकास हुआ। उपनिवेश पर नियमित सेना का एक बोझ लाद दिया गया। अफ्रीकी संप्रभुता का ध्वस्त होना औपनिवेशिक शासन के कारण हुई सबसे बड़ी त्रासदी थी। अपने ही देश के विकास पर उपनिवेश का नियंत्रण समाप्त हो गया। उपनिवेशवाद ने पूरी दुनिया में हो रहे विकास से अफ्रीका को वंचित रखा।

22.5 अफ्रीका में ब्रिटिश उपनिवेशवाद : मिस्र

अफ्रीका में नाइजीरिया, गोल्ड कोस्ट, गाम्बिया, सिएरा लेयोने, किनिया, तंगानयीका, न्यासलैंड, यूगांडा, उत्तरी और दक्षिणी रोडेसिया और साउथ अफ्रीका पर ब्रिटेन का अधिकार था। यहां हम उदाहरण के तौर पर मिस्र का अध्ययन करने जा रहे हैं जिससे यह पता चलता है कि प्रत्यक्ष औपचारिक राजनैतिक वर्चस्व के बिना भी किस प्रकार उपनिवेशवाद प्रभावी रूप से कार्य कर सकता है।

22.5.1 विजय अभियान

उन्नीसवीं शताब्दी की शुरुआत में नेपोलियन ने मिस्र पर कब्जा करने की असफल कोशिश की थी। अंग्रेजों की सेना ने फ्रांसीसी सेना को पीछे धकेल दिया और 1801 में मिस्र पर कब्जा कर लिया। हालांकि यह दो वर्षों तक ही कायम रहा और एमेंस की संधि के बाद मार्च 1803 तक अंग्रेजों की सेना मिस्र छोड़कर चली गई। अंग्रजों ने 1807 में मिस्र पर फिर से आकमण किया परंतु उन्हें वापस लौटना पड़ा। 1840 में नेपियर के नेतृत्व में अंग्रेजों की एक सेना ने एलेगजेन्ड्रिया पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया। एक संधि पत्र पर हस्ताक्षर हुआ जिसके द्वारा मिस्र के शासक मोहम्मद अली की शक्ति सीमित कर दी गई। मिस्र वस्तुत: ब्रिटिश उपनिवेश बन गया। हालांकि नाममात्र के लिए मिस्र पर तुर्की शासन कायम रहा। परंतु ब्रिटेन और फ्रांस के वाणिज्य-प्रतिनिधियों के पास ही असली अधिकार थे। मिस्र पर फ्रांस और ब्रिटेन दोनों का संयुक्त नियंत्रण था और उनके बीच की प्रतिस्पर्धा के कारण ही मिस्र स्वतंत्र रहा।

1842 में 1838 की आंग्ल-तुर्की व्यापार संधि मिस्र पर लागू की गई। ब्रिटिश व्यापारियों और उद्योगपतियों को कपास सीधे उत्पादकों से खरीदने की अनुमति दी गई और मिस्र को निर्यात की गई ब्रिटिश वस्तुओं पर न्यूनतम सीमा शुल्क लगाया जाता था। 1845 तक इंग्लैंड मिस्र के व्यापार में बड़ा भागीदार था। मिस्र के आयात में एक चौथाई हिस्सा और निर्यात में एक तिहाई हिस्सा इंग्लैंड का था। 1851 में अंग्रजों को एलेगजेन्ड्रिया से लेकर काहिरा और स्वेज नहर तक रेल लाइन बिछाने के लिए रियायत दी गई जो भारत में ब्रिटेन के उपनिवेश की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण था। रेलवे लाइन के निर्माण से मिस्र का महत्व बहुत बढ़ गया क्योंकि अब यहां से जहाज से उतरे सामान को कहीं भी आसानी से ले जाया जा सकता था। 1858 में भारत में हुए विद्रोह को दबाने के लिए इसी रास्ते से सेना भेजी गई।

ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने मिस्र को साम्राज्यवादी देश का एक कृषीय और कच्चे माल का आपूर्तिकर्ता मात्र बना दिया। उपनिवेशवाद के दौरान मिस्र में विदेशी शक्तियों और विदेशी कम्पनियों ने मिस्र का दर्दनाक शोषण किया और उसे ऋण के बोझ तले दबा दिया। उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान ब्रिटेन और फ्रांस ने मिस्र की राजनैतिक गतिविधियों को अपने नियंत्रण में रखा, सरकारें गिराईं और कठपुतली शासनों की स्थापना की। तूर्कों, मामलुकों, अलम्बानियन कुलीनों, फ्रांसीसियों और अंग्रेजों के शोषण के परिणामस्वरूप, मिस्र में असंतोष फैला और इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रवाद का उदय हुआ।

22.5.2 मिस्र में ब्रिटिश आर्थिक नीति

मिस्र में उपनिवेशवाद के दो चरण एक दूसरे में मिले हुए थे। ब्रिटिश उद्योगपतियों का मुख्य उद्देश्य अपने उद्योगों के लिए मिस्र को कपास का एक आपूर्तिकर्ता बनाना था। मिस्र में उनका दूसरा आकर्षण यह था कि वह वित्त पूंजी के निवेश के लिए एक महत्वपूर्ण क्षेत्र था। 1897-1007 के वित्तीय तेजी के दौरान मिस्र में विदेशी पूंजी का निवेश कुल मिलाकर 73,500,000 मिस्र पाउंड हो गया। इसमें औद्योगिक निवेश का

अनुपात काफी कम था। 1833-97 में यह कुल निवेश का 29% था जो वित्तीय तेजी के दौरान और भी नीचे आ गया। वाणिज्य बैंकों, ऋण बंधक बैंकों (Mortgage Banks), भूमि सौदों से संबंधित कम्पनियों और सार्वजनिक उद्योगों में अधिकांश विदेशी निवेश हुआ। अनुमानतः विदेशी निवेश का 79 % गैर उत्पादक क्षेत्रों जैस सार्वजनिक ऋण बंधक बैंकों (Mortgage Banks) में था, व्यापार और परिवहन में 12.36 % था और उद्योग और निर्माण में 5% था।

ब्रिटिश उद्योगपतियों ने मिस्र को मुख्यतः एक कपास उगाने वाले देश में बदल दिया। इस काम के लिए सिंचाई के कई उपाय किए गए। 1879 में 495, 000 फेडेन क्षेत्र में कपास उपजाया जाता था जो 1913 में बढ़कर 1,723,000 फेडेन हो गया। 1910 और 1914 के बीच कुल कृषीय उत्पाद के मूल्य में कपास का हिस्सा 43 % था। 1913 में कुल निर्यात में कपास का हिस्सा 85 % था। 1860 और 1870 के बीच कपास का निर्यात बढ़कर पांचगुना हो गया था जबकि 1843 से 1872 के बीच आयात तिगुना हो गया था। तीस वर्षों में मिस्र के समुद्र पार व्यापार की कुल मात्रा पांच गुनी बढ़ गई।

मिस्र में एक फसल अर्थव्यवस्था होने के परिणामस्वरूप मिस्र को अनाज का आयात करना पड़ता था। विदेशियों के पास 7000,000 फेडेन जमीन थी जो निजी स्वामित्व वाली जमीन का 13 % थी। इसके अलावा उनका 27 % भूमि पर नियंत्रण था जो विदेशी कम्पनियों के पास गिरवी रखी गई थी। कपास संसाधित करने वाले और कपास की सफाई करने वाले उद्योग तथा पानी के जहाजों पर, जो कपास ढोकर ले जाते थे, अंग्रेजों का नियंत्रण था। मिस्र के सम्पूर्ण कपास व्यापार पर अंग्रेजों का नियंत्रण था। मिस्र के शोषण का यह एक बहुत बड़ा प्रमाण है कि वहां एक भी कपड़े की मिल नहीं थी।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में परिवहन और संचार के साधनों का विकास हुआ। रेलवे, टेलीग्राफ लाइनों और पानी के जहाजों का प्रचलन बढ़ा। कुछ हद तक मिस्र में उद्योगों का भी तेजी से विकास हुआ। मिस्र में चीनी साफ करने, छोटे कपड़े और कटाई की मिलें, फाउन्ड्री और मरम्मत के कारखाने आदि जैसे उद्योगों की स्थापना हुई जिनमें अपेक्षाकृत निम्न स्तर के प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल होता था। शुल्क संरक्षण का अभाव उद्योग के लिए अलाभप्रद था।

22.5.3 स्वेज नहर

1850 के दशक में फ्रांस के एक शक्तिशाली पूंजीपति फर्डिनैंड डे लेसेप्स ने स्वेज नहर बनाने का प्रस्ताव रखा। अब्बास पासा, जिसने इस परियोजना का विरोध किया था कि मृत्यु के बाद नए शासक ने, जो डे लेसेप्स का व्यक्तिगत मित्र था , स्वेज नहर के निर्माण के लिए रियायतें दीं। मिस्र को उपनिवेश बनाने की प्रक्रिया को तेज करने के लिए स्वेज का निर्माण किया गया। कुल पूंजी का 44 % अंश मिस्र से आया; इसके अलावा श्रम और भूमि मुफ्त दी गई। मिस्र को जबरन इस परियोजना के लिए बड़ी मात्रा में विदेशी ऋण लेने के लिए बाध्य किया गया। लगभग 25,000 से लेकर 40,000 मजदूरों को काम पर लगाया गया। अतः यह मिस्र के *फेलाहिन* का अनिवार्य अर्ध दास श्रम था जिसने पूंजीवाद के एक सबसे बड़े ढांचे को निर्मित किया। जैसा कि हम जानते हैं उपनिवेशवाद पूंजीवादी पूर्व अर्थव्यवस्था के श्रम प्रारूपों का इस्तेमाल करता है। वस्तुतः मध्य काल से चली आ रही व्यवस्था मिस्र के पूंजीवादी विकास का एक विशेष लक्षण था। इससे कृषि और उद्योग दोनों क्षेत्रों के विकास और आधुनिकीकरण में बाधा पहुंची।

स्वेज नहर परियोजना ने मिस्र की सरकार को वित्तीय संकट में डाल दिया। मिस्र पर 400,00,000 फ्रैंक का कुल बोझ पड़ा। अपना अंश बेचकर इसमें से उसे केवल एक चौथाई राशि ही प्राप्त हुई। लाखों पौंड का ऋण उसके ऊपर थोप दिया गया जबकि इस परियोजना का उसे तनिक भी लाभ नहीं मिलना था। इस परियोजना का लाभ केवल साम्राज्यवादियों को मिलना था जिन्हें पूरब पहुंचने में कम समय और कम लागत लगती। लंदन के बैंकरों ने मिस्र की सरकार को लाखों पौंड उधार दिए। इन ऋणों पर दिया जाने वाला ब्याज समृद्ध प्रांतों के राजस्व के बराबर था। 1876 तक मिस्र का कुल विदेशी ऋण 94,000,000 पौंड हो गया। इस पर प्रतिवर्ष 8,000,000 पौंड ब्याज देना पड़ता था। सरकार ने इस परियोजना का अपना अंश ब्रिटेन को बेंच दिया। इसके बाद ब्रिटेन इस परियोजना का सबसे बड़ा अंशधारक हो गया और उसे इस स्थिति का फायदा मिला तथा वह फ्रांस को इस परियोजना पर पूर्ण नियंत्रण पाने के लिए हुई प्रतिद्वंद्विता में पिछाड़ने में सक्षम रहा। इस नई नीति की जड़ यूरोप में एकाधिकार पूंजीवाद के चरण की शुरुआत में निहित थी। यूरोपीय शक्तियों ने अपनी औपनिवेशिक नीति में अधिक आक्रामक रुख अपनाया।

ब्रिटेन ने मिस्र की वित्तीय स्थिति की समीक्षा के लिए एक जांच आयोग का गठन किया। उसके वित्त पर फ्रांस और ब्रिटेन का दोहरा नियंत्रण स्थापित किया गया। 1878 में मुख्य रूप से यूरोपीय अधिकारियों से युक्त एक नया मंत्रिमंडल स्थापित किया गया। अब मिस्र आंग्ल-फ्रांसीसी बैंकरों का एक उपनिवेश बन गया। इसके खिलाफ चारो ओर स्वाभाविक रूप से असंतोष की लहर फैली। राष्ट्रवादियों या *वतनेन* ने इस असंतोष को अभिव्यक्ति दी। अलोकप्रिय यूरोपीय मंत्रिमंडल के स्थान पर एक राष्ट्रवादी सरकार की स्थापना हुई। परंतु यह ज्यादा दिन न टिक सकी और यूरोपीय ताकतों ने अपनी शक्ति फिर से मजबूत कर ली।

22.5.4 राज्य संरचना

1882 में मिस्र ब्रिटेन का उपनिवेश बन गया परंतु औपचारिक रूप से न तो इस पर आधिपत्य स्थापित किया गया और न ही इसे संरक्षित राज्य के रूप में मान्यता प्रदान की गई। मिस्र आटोमन साम्राज्य का ही अंग बना रहा। ब्रिटेन के अनुसार उसने यहां अस्थाई आधिपत्य स्थापित किया था। अंग्रेज मिस्र पर कब्जा जमाने से हिचक रहे थे क्योंकि इससे गंभीर अन्तरराष्ट्रीय संकट उत्पन्न होने की आशंका थी। आन्तरिक अव्यवस्था का बहाना बनाकर आनेवाले दशकों में उनका आधिपत्य कायम रहा। फ्रांस ने 1904 में आंग्ल-फ्रांसीसी संधि के द्वारा मिस्र पर ब्रिटेन का आधिपत्य स्वीकार कर लिया।

स्वेज नहर पर अन्तरराष्ट्रीय आयोग का नियंत्रण स्थापित होना था। 1906 में, ब्रिटेन ने सिनाइ प्रायद्वीप पर कब्जा जमा लिया। मिस्र के वित्त पर दोहरा नियंत्रण समाप्त हो गया और इसके साथ ही साथ फ्रांसीसी प्रभाव की भी समाप्ति हो गई। व्यवहार में मुख्य शक्ति अंग्रेज प्रशासक के पास थी। हालांकि खेदिव नाम मात्र के लिए शासक था और विधान परिषद तथा महासभा की उपस्थिति भी दिखावा मात्र थी। ब्रिटेन का प्रधान राजदूत ब्रिटिश वित्त पूंजी का संरक्षक था। लॉर्ड कोमर सबसे ज्यादा दिन तक प्रशासक रहा। इसके बाद गोस्ट और जेनरल किशेनर वहां के प्रशासक बने।

मिस्र औपचारिक रूप से ब्रिटेन का उपनिवेश नहीं था। उसके बावजूद ब्रिटेन ने मिस्र ने प्रथम विश्वयुद्ध में भाग लिया। युद्ध के लिए मिस्र के प्राकृतिक संसाधनों और मानव संसाधनों का उपयोग किया गया। उसकी सारी अर्थव्यवस्था युद्ध कर आग में झोंक दी गई। सेनाओं के लिए किसानों की फसलों पर बलपूर्वक कब्जा जमा लिया गया। मिस्र के राष्ट्रीय बैंक के स्वर्ण भंडार को ब्रिटिश राजकोष में डाल दिया गया। मिस्र को स्टरलिंग क्षेत्र में शामिल कर लिया गया जिससे ब्रिटेन के लिए अपने सैनिक खर्चे के लिए कागजी मुद्रा में भुगतान करना संभव हो सका। युद्ध के दौरान मुद्रा स्फिति में अचानक वृद्धि हुई। युद्ध के कारण विदेशी व्यापार के बाधित होने से मिस्र के स्थानीय उद्योग को बल मिला। 1914 में मार्शल लॉ लागू किया गया, राजनैतिक विरोधियों के प्रति तानाशाही शासन ने सख्ती की नीति अपनाई और हजारों बुद्धिजीवियों को देश से निकाल दिया गया। राष्ट्रीय आंदोलन तेजी से फैला। 18 दिसम्बर 1914 को मिस्र को औपचारिक तौर पर ब्रिटिश संरक्षित राज्य घोषित कर दिया गया।

22.6 अफ्रीका में फ्रांसीसी उपनिवेशवाद

अब हम अफ्रीका में फ्रांसीसी उपनिवेशवाद की चर्चा करने जा रहे हैं। इसके अन्तर्गत अल्जीरिया और ट्यूनीसिया पर विचार किया जाएगा।

22.6.1 अल्जीरिया

अल्जीरिया उत्तर अफ्रीका में फ्रांस का पहला उपनिवेश था। चार्ल्स X ने 1830 में वहां अपनी सेना भेजी। आगे आने वाले वर्षों में नागरिक प्रशासन को संगठित किया गया। 1839 तक 70,000 फ्रांसीसी अल्जीरिया में बस गए। 1839 के बाद फ्रांसीसी उपनिवेशवाद शुरु हुआ। स्थानीय जनजातियों की जमीन फ्रांसीसी उपनिवेशवादियों को दे दी गई जिन्होंने बड़े इस्टेट्स और विशाल महल बनाए। आरंभ में समुद्र तट पर बसे शहरों तक ही फ्रांस का नियंत्रण सीमित था। धीरे-धीरे उन्होंने पूरे देश पर कब्जा कर लिया।

अल्जीरिया को फ्रांस का एक कृषि आपूर्ति कर्ता बना दिया गया। वहां कच्चे माल का उत्पादन होता था और फ्रांसीसी उत्पाद वहां मुनाफे पर बेचे जाते थे। फ्रांसीसी विजय अभियान के पूर्व के घरेलू उद्योग और व्यापार

नष्ट हो गए। कारीगर बरबाद हो गए। जमीन पर कब्जा स्थापित किया गया तथा यह नियंत्रण का प्रमुख जरिया बना। 1871 तक बाहर से आकर बसने वाले औपनिवेशिक लोगों को 480,000 हेक्टेयर भूमि दे दी गई। फ्रांसीसी पूंजीवादी कम्पनियों ने भूमि का एक बड़ा हिस्सा हासिल किया। बड़ी पूंजीपति कम्पनियों के कब्जे में जमीन हो जाने के बावजूद अल्जीरिया में एक पिछड़ी कृषि अर्थव्यवस्था कायम रही। अल्जीरिया के खनिज पदार्थों का दोहन भी मुनाफे का एक अन्य स्रोत था। फ्रांसीसी कम्पनी कच्चे लोहे और फौसोफाइराइट के भंडारों का दोहन करती थी। व्यापार बढ़ाने और सैनिक तथा रणनीति से संबंधित उद्देश्यों को पूरा करने के लिए रेलवे की स्थापना की गई। 1871 से लेकर 1914 तक विदेश व्यापार बढ़ा जिससे यह पता चलता है कि उपनिवेश के तौर पर अल्जीरिया की उपयोगिता बढ़ रही थी। कपड़ों का आयात तेजी से बढ़ा जिससे यह पता चलता है कि अल्जीरिया फ्रांस के उत्पादों का उपभोक्ता था।

1871 में दूसरे साम्राज्य के पतन के बाद अल्जीरियावासियों को फ्रांसीसी शासन को उखाड़ फेंकने का संकेत मिला। स्थानीय फ्रांसीसी बुर्जुआ वर्ग ने पारीसियन बुर्जुआ वर्ग के एकाधिकार और सैनिक शासन का विरोध किया। शेष लोग भी औपनिवेशिक शासन के खिलाफ थे क्योंकि उपनिवेश के शासकों ने शोषण कर वहां की अर्थव्यवस्था को नष्ट कर दिया था। 1866 और 1872 के बीच अकाल और महामारी के कारण कुल जनसंख्या का 1/5 वां हिस्सा मारा गया। 14 मार्च 1871 को मोहम्मद एल मोकरानी के नेतृत्व में अरब और बरबर विद्रोह हुए। विद्रोहियों को आरंभ में सैनिक विजय प्राप्त हुई परंतु पेरिस कम्यून की विफलता के बाद उनकी स्थिति बहुत कमजोर हो गई। अन्ततः विद्रोह को दबा दिया गया।

आने वाले वर्षों में औपनिवेशिक कुशासन अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया और साम्राज्यवादी शासन अपने उत्कर्ष पर। अरबवासियों की जमीन पर कब्जा जमा लेने से फ्रांस जैसे औपनिवेशिक देश की स्थिति काफी मजबूत हो गई थी। उन्होंने 500,000 हेक्टेयर अतिरिक्त भूमि हासिल कर ली और 1917 तक फ्रांस के पास कुल भूमि की 55 % जमीन थी। देशी किसानों और बंजारों को निर्जन क्षेत्रों में भेज दिया गया और वे बड़ी संख्या में मर गए। फ्रांसीसियों को राजनैतिक विशेषाधिकार दिए गए जबकि अरबवासियों और बरबरों को ये विशेषाधिकार नहीं दिए गए। फ्रांसीसी नागरिक थे जबकि अरब और बरबर उनके अधीन थे। उन पर अलग कानून और अलग कर की दरें लागू होती थीं। देशी अल्जीरियावासियों ने समानता और जनतंत्र की मांग की और भेदभाव का विरोध किया।

22.6.2 ट्यूनीसिया

तुर्की से स्वतंत्रता दिलाकर फ्रांस ने ट्यूनीसिया पर नियंत्रण स्थापित कर लिया। 1837 में फ्रांस ने ट्यूनीसिया क्षेत्र पर आक्रमण किया परंतु ब्रिटेन के दबाव में उसे पीछे हटना पड़ा। आधुनिकीकरण के प्रयत्नों के कारण वहां के शासकों की वित्तीय स्थिति काफी कमजोर हो गई और उन्हें विदेशी बैंकों से प्रतिकूल शर्तों पर बड़ी मात्रा में ऋण लेने के लिए बाध्य होना पड़ा। किसानों और कारीगरों से जबरन कर वसूला गया और इसके लिए क्रूरता से ताकत का इस्तेमाल किया गया।

1881 में फ्रांस ने ट्यूनीसिया पर कब्जा जमा लिया। इटली वहां पहले से ही मौजूद था और वहां उसने रेलवे और टेलीग्राफ में रियायतें हासिल कर रखीं थीं। 1871 में प्रशा के हाथों फ्रांस की हार के कारण इटली को कुछ विशेषाधिकार हासिल करने का हौसला मिला। 1878 की बर्लिन कांग्रेस में यूरोपीय शक्तियों ने फ्रांस को औपचारिक रूप से ट्यूनीसिया पर कब्जा करने की अनुमति दे दी। सीमा विवाद के बहाने 1881 में कब्जा जमा लिया गया। फ्रांस ने घोषणा की कि भविष्य में ट्यूनीसिया के विदेशी संबंधों पर उसका नियंत्रण होगा। राज्य की शासन व्यवस्था को फ्रांसीसी एकाधिकार पूंजी के हितों की पूर्ति करनी थी। 1884 में अन्तरराष्ट्रीय आयोग से वित्तीय नियंत्रण फ्रांस के हाथ में आ गया। इसके बावजूद उपनिवेश में इटली की रुचि बनी रही और इटली का प्रभाव क्षेत्र कायम रहा। फ्रांसीसी विस्तारवाद पर नियंत्रण लगाने के लिए इटली ने जर्मनी और आस्ट्रिआ-हंग्री के साथ त्रिपक्षीय संधि पत्र पर हस्ताक्षर किए। 1896 में फ्रांसीसियों ने इटली निवासियों को विशेष दर्जा प्रदान किया और इसके बदले में इटली ने ट्यूनीसिया को फ्रांस का संरक्षित राज्य मान लिया। ट्यूनीसिया में इटलीवासियों की संख्या फ्रांसीसियों से ज्यादा हो गई। जमीन पर कब्जा किया जाना शोषण का सबसे आम तरीका था। खनिज भंडारों का दोहन एक दूसरा रूप था।

22.7 दक्षिण-पूर्व एशिया

1941-5 के प्रशांत युद्ध के समय से ही दक्षिण-पूर्व एशिया नाम का प्रयोग होता आ रहा है। इसमें बर्मा, थाइलैंड, उत्तरी और दक्षिणी वियतनाम, कम्बोडिया, लाओस, मलेशियाई संघ, ब्रुनेई, इंडोनेशिया और फिलीपिन्स शामिल हैं। दक्षिण-पूर्व एशिया में 15 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर 20 वीं शताब्दी के मध्य तक उपनिवेशवाद कायम रहा। यूरोप की सैनिक और नौसैनिक सर्वोच्चता ने उसे शेष दुनिया पर आधिपत्य जमाने का मौका दिया। तोप और भाप से चलने वाली सशस्त्र नौकाओं ने एशियाई देशों के अस्त्रों को अप्रभावी बना दिया। यूरोपीय देशों का उद्देश्य धन, सम्मान अर्जित करना और इसाई धर्म का प्रचार करना था। यहां तक कि मसाला व्यापार के स्वर्ण काल के बाद भी दक्षिण-पूर्व एशिया यूरोप के लिए महत्वपूर्ण था क्योंकि यहां से यूरोपीय उद्योग के लिए कच्चे माल की आपूर्ति होती थी; जैसे तेल, रबर, धातु, चावल, कॉफी, चाय और चीनी। 1870 के बाद अंदरूनी इलाकों का भी औपनिवेशीकरण हुआ। इससे थाइलैंड भी प्रभावित हुआ। हालांकि वह उपनिवेश नहीं था।

विक्टर पर्सेल के अनुसार " यूरोपीय विस्तार के लिए आग और तलवार का नहीं बल्कि व्यापार, संधि, प्रत्ययकारिता और वैधानिकता जैसे उपकरणों का इस्तेमाल किया गया।'' पुरानी राज्य व्यवस्थाएं ध्वस्त कर दी गईं, वाणिज्य की पद्धतियां बदल दी गईं और एशियाई सभ्यताओं की सांस्कृतिक और बौद्धिक समझ को चुनौती दी गई।

22.7.1 इंडोनेशिया

मसाले का व्यापार बहुत ही लाभप्रद था और इसने यूरोपीय शक्तियों को आकर्षित किया। 16 वीं शताब्दी के आरंभ में पुर्तगाली मलक्का आए परंतु 1600 ई. तक उनकी ताकत कमजोर पड़ गई। उन्होंने पहली बार मक्का, तंबाकू, सकरकन्द, और कोकोआ से लोगों को परिचित कराया। डच व्यापारियों ने 1594 में एक कम्पनी बनाई। 1602 में इन कम्पनियों को एकीकृत कर दिया गया और उन्हें एकसमान घोषणा पत्र प्रदान किया गया। व्यापार को बढ़ाने के लिए क्षेत्रीय विस्तार किया गया। व्यापार करने और विरोधियों को बाहर रखने के लिए एक सुरक्षित क्षेत्र की जरूरत थी। राजस्व वसूली भी एक महत्वपूर्ण वित्तीय स्रोत था। 1682 तक फ्रांसीसियों और अंग्रेजों के बीच प्रतिस्पर्धा चलती रही परंतु 1682 के बीच अंग्रेज और फ्रांसीसी प्रतिद्वंद्विता से अलग हो गए। पेरिस की संधि के प्रावधानों के तहत 1784 में डच एकाधिकार प्रणाली समाप्त कर दी गई।

जावा के किसानों को निर्यात करने के लिए फसलें उगानी पड़ीं। स्थानीय लोगों को कम मजदूरी पर काम करने को बाध्य होना पड़ा और उन्हें डच व्यापारियों से मनमाने दाम पर वस्तुएं खरीदनी पड़ती थीं। कृषि का सारा निर्यात निदरलैंड को होता था। औपनिवेशिक शासकों की अनुमति के बिना किसान नगदी फसल नहीं उपजा सकते थे। डच अधिकारी बिना अनुमति के लगाए गए लौंग और जायफल के पेड़ों को नष्ट कर दिया करते थे।

उपनिवेश में बहुत कम पूंजी निवेश किया गया। खनन विकास अपनी शैशव अवस्था में था। 1860 के दशक में रेलवे का निर्माण किया गया। 1900 तक 3000 कि.मी. लम्बी रेल लाइन बिछाई गई थी। 1856 में टेलीग्राफ सेवा और 1866 में डाक सेवा की शुरुआत की गई।

उपनिवेशवाद ने द्वीप समूह की पुरानी राजनैतिक व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डाला और नए ढांचों के लिए मार्ग प्रशस्त किया। डच औपनिवेशिक शासन ने पुराने राज्यों का दमन कर एक आधुनिक राज्य के लिए जगह बनाई।

22.7.2 फ्रांसीसी हिन्द-चीन (इंडो-चीन)

फ्रांस ने 1859 में सैगांव पर अधिकार जमा लिया। 1861 में कम्बोडिया फ्रांस का संरक्षित राज्य बन गया। 1887 – में कोचिन चीन, अन्नम और टौंगकिंग को मिलाकर इंडो-चीन संघ बना।

अपने उद्योगों खासकर कपड़ा उद्योगों, लोहा और इस्पात तथा मशीन उद्योग को लाभ पहुंचाने के लिए फ्रांस

ने सीमा शुल्क लगाया। इसके परिणामस्वरूप काफी धीमी गति से औद्योगीकरण हुआ। कोयला, टिन और जिंक के खनन में विदेशी पूंजी लगाई गई। जंगलों में लकड़ी काटी गई और रबर के पेड़ लगाए गए। 1911 और 1912 के बीच फ्रांस से इंडो-चीन को होने वाले निर्यात में 19.6 % की वृद्धि हुई। 1838 तक यह बढ़कर 53% हो गया।

किसानों के स्वामित्व के स्थान पर भूमिपतियों का स्वामित्व हो गया। भूमिपतियों ने 80 % भूमि पर नियंत्रण स्थापित कर लिया और 200,000 लोगों को बटाईदार के रूप में काम पर लगाया गया। अनुपस्थित भूमिपति प्रथा का बोलबाला था। इसके परिणामस्वरूप गांवों पर जनसंख्या का दबाव, कुपोषण और गरीबी बढ़ी। उन पर कर का भार ज्यादा लाद दिया गया।

फ्रांस की औपनिवेशिक नीति का उद्देश्य अपने क्षेत्रों को "गैलिसाइज" (फ्रांसीसीकरण) करना था। इसके विपरीत अंग्रेजों और डचों ने परम्परागत तरीकों को अपनाया। अप्रत्यक्ष शासन दुहरा बोझ था क्योंकि इसमें दो नौकरशाहियों का भरण-पोषण करना था – एक फ्रांसीसी और दूसरा नाममात्र, निष्प्रभावी।

बोध प्रश्न 2

1) मिस्र में अंग्रेजों की आर्थिक नीतियों पर लगभग 100 शब्दों में विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

....

2) अल्जीरिया और ट्यूनीसिया में फ्रांसीसी उपनिवेशवाद का क्या प्रभाव पड़ा?

....

....

....

....

....

....

22.8 सारांश

प्रत्यक्ष शासन के तहत औपनिवेशिक शोषण के मुख्यत: तीन चरण थे : शोषण और व्यापार पर एकाधिकार, मुक्त व्यापार और उपनिवेशों में पूंजी निवेश। हालांकि ये चरण समय के प्ररिप्रेक्ष्य में एक के बाद एक आते हैं परंतु कई बार दूसरे और तीसरे चरण आपस में घुल मिल जाते हैं। मुक्त व्यापार की अवधारणा हाल तक कई रूपों में विद्यमान रही और कुछ उपनिवेशों में प्रत्यक्ष वित्तीय निवेश होता रहा। परंतु इन सभी रूपों में साम्राज्यवादियों और उपनिवेशों के बीच का संबंध शोषक और शोषित का रहा। उपनिवेशों का आर्थिक शोषण किया गया। उनके परम्परागत उद्योग नष्ट हो गए और कई बार वे साम्राज्यवादी देशों के उद्योगों के निर्माण और विकास के लिए कच्चे माल के आपूर्तिकर्ता मात्र बन कर रह गए। उपनिवेशों के लिए यह हमेशा भेदभावपूर्ण संबंध रहा। इसमें उपनिवेश गरीब होते चले गए और साम्राज्यवादी देश समृद्धि की ओर बढ़ते चले गए।

22.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अपने उत्तर के लिए भाग 22.2 देखिए।

2) देखिए उपभाग 22.3.1

बोध प्रश्न 2

1) देखिए उपभाग 22.5.2

2) देखिए भाग 22.6